"अन्न"

"जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन ।" "तन धोतेयां मन हच्छा न होई ।" तन यानी शरीर इस जीव को इस मुल्क (मृत लोक) में कार्य करने के लिये साधन के रूप में नौ महीने गर्भ (घोर नरक) जैसी यातना भुगत लेने पर ही केवल प्राप्त होता है, किसी विशेष मकसद अथवा मंजिल तक पहुँच जाने के लिये । इन चलते फिरते मुर्दो से ठूंस-2 कर भरी हुई "शमशान भूमि" में वासनाओं के अथाह समुद्र में डूबी इस "कब्र" को केवल सजाने

से आप का मकसद कैसे हल हो सकेगा ? इस चलते फिरते "मुर्दे" को स्थिर रखने का आधार केवल "प्राण" हैं जो आप को रोज का 21,600 निश्चित रूप में प्राप्त हुआ है । अकथ मेहनत करने तथा किसी की विशेष दया से यह दुर्लभ "बिस्टा का पात्र" आप के भाग्य में प्रत्यक्ष हुआ है । अपने "विशेष" मकसद को भूल कर आप इसे कहीं और कार्यो में व्यस्त रखने पर बड़े जुर्माने के भागीदार अवश्य बना दिये जाओगे । पहला तो आप को फिर से ये दुर्लभ जन्म अथवा मौका ही नहीं मिलेगा । दूसरा अपनी इस गद्दारी का भुगतान आप को घोर नरकों अथवा निचली "छुद्र-निकृष्ट" जूनों अथवा कब्रों को रोशन करने के लिये अनन्त काल के लिये मजबूर होना पड़ेगा । "कबीर सूता क्या करे - जागन की कर चैप । ऐ दम (प्राण) हीरा-लाल हैं - गिन-गिन {गुर केवल शब्द (रागमई आवाज) जिस में से प्रकाश (नाम) निरन्तर प्रत्यक्ष होता है !} कोउ सौंप । कहता हूँ - कहे जात हूँ - कहूँ बजावत ढोल - स्वासा (प्राण) बिरथा जात है - तीन लोक का मोल ।" ये भाव हैं जो फकीर ने तजुर्बे के साथ जिन्दगी भर का निचोड़ आप की झोली में बिना किसी लोभ के तकसीम कर दिया है, कि ये प्राण केवल परमात्मा की एक उत्कृष्ट देन हैं जो उसी पर खर्च करने के लिये गिनती की मिली है । उसे आप निश्चित (रूप से) जान लो । पलड़ा वही झुकेगा जो भारी होगा । अर्थात रोज के गिनती के मिले प्राण आपने कहाँ पर किस मकसद को

प्राप्त करने के लिये खर्च किये । "कर-कर करणा लिख लै जाह । आपे बीज आपे ही खाह । नानक हुकमी आवह जाह ।" इस वाक्य में इसी भाव को व्यक्त किया गया है । बीजने से पहले (प्राण खर्च करना) तुझे पूरी छूट है खूब सोच ले । पर जब तु एक बार बो देगा तो केवल वही बीजा हुआ अच्छा अथवा बुरा जुर्माने सहित कट कर तुझे हर कीमत अथवा हाल में खून के आँसू बहाने या रोने-चिल्लाने के बावजूद हजम करना ही होगा । ऐसा नही है कि तु बीजेगा अक्क धतुरे और किसी हुजूर-दाता-महाराज इत्यादि बिना "ताज" के बादशाहों की केवल शक्ल देख कर ही अथवा रस मीठे में लिबड़ी गोल-2 चिकनी चुपड़ी बातें अथवा प्रसंग यानी के "सत्संग" सुनकर अपनी इस प्यारी बीजी फसल को "शाही आमों" के रूप में बदल लेगा ! तु निश्चित रूप से समझ ले कि तुझे बहुत बड़ा धोखा हो चुका है, केवल नाक तक ही नहीं तु पूरा का पूरा सिर सहित इस अँधेरे भयावले भवसागर में अकथ काल के लिये डूब चुका है । और इसका जिम्मेदार केवल तु स्वंय है । भीड़ का हिस्सा बनने से पहले तु खूब सोच, तुझे बुद्धि दी गई है । "सभ कुछ घर में बाहर नाही । बाहर टोले सो भ्रम भुलाई ।" तेरे ये स्थापित किये हुए परमात्मा इस केवल "सभ" लफज को झूठा साबित करने में लगे हैं और तु उनकी इस हिमाकत में योगदान दे रहा है । निश्चित रूप से समझ

ले "वाणी" की एक मात्रा भी आगे पीछे करने में तु अपने "पातशाहों" सहित कभी भी किसी भी काल में समर्थ न हो सकेगा । वाणी में "शक" की गुंजाइश कभी भी संभव नहीं रहती । करने वाले को देर-सवेर जुर्माना अवश्य भुगतना ही पड़ेगा । तेरे स्थापित किये गये ऐसे अनन्त परमात्मा अनन्त काल से इस मिट्टी से बने और फिर इसी में सदा के लिये दफन कर दिये गये । जो बने बैठे हैं तु नहीं जानता इन सफेदपोश परमात्माओं (अथवा गद्धियों) के अन्दर सूक्ष्म अदृश्य शैतानी ताकतें बड़ी चालाकि से अपना "उल्लू सीधा" कर रही हैं। तु दुनिया के गले छोटे करने में अथवा जेब तराशने में लगा है । केवल मिलावट से ही तु अपने को चतुर साबित कर रहा है । और कोई बहुत तेजी से दोनों हाथों से तुझे "लूट" रहा है जिसकी तुझे सुपने में भी खबर नहीं । "अजहू कछ बिगरिओ नहीं - जो प्रभ गुन गावै । कह नानक तिह भजन ते - निरभै पद पावै ।" इसमें एक मिसाल छुपी है कि जब तक तेरी डोर लोटे से बँधी है, तु कुएं से जल खींच कर अपनी प्यास बुझा सकता है अवश्य । पर एक बार ये डोर टूट गई तो सोच इस कुएं से तु क्या प्राप्त कर सकेगा ? केवल प्यासा तड़प-2 कर मरने के और क्या संभव हो सकेगा ! अर्थात जब तक तेरी प्राण की डोर इस शरीर से बँधी है तु अपनी जन्मों-जन्मों की प्यास अवश्य बुझा सकेगा । एक बार-सिर्फ एक बार जब ये प्राण की डोरी टूट

गई तो सोच क्या कर सकेगा इस "कुएं" का। सिवाय अग्नि भेंट-दफनाने अथवा जल प्रवाह के इसका कुछ अर्थ बाकी नहीं रह जायेगा। कीड़े या (जानवर) खायेंगें वो गंद बनेगा या अग्नि में जलकर केवल राख। कैसे तेरा वो मकसद हल होगा जिसके लिये तुझे किसी ने अपनी दया का उत्कृष्ट दुर्लभ मानुख जन्म दिया है।

इस प्राण का आधार केवल "अन्न" ही है सभी कब्रों का निश्चित विधान। इस पोषण के साधन अन्न पर तुझे खूब विचार कर लेना चाहिए। आत्मा केवल आत्मा को खा कर ही स्थिर रह सकती है। शैतान के उस "कब्रिस्तान" में। "जेते दाणे अन्न के - जिया बाझ ना कोई। पहला पाणी जिओ है - जित हरिआ सभ कोई।" कोई अन्न का दाना आत्मा के अंकुरित होने में असंभव है। इसके अन्दर मौजूद आत्मा ही केवल अपने रहने का घर अथवा घोंसला प्रत्यक्ष करती है। पर कभी चाह कर भी इस घोंसले से अपने को अलग नहीं कर सकती। कोई इस पर निरन्तर सख्त "नजर" रखता है। यह एक भयानक कैद खाने के सिवा और कुछ भी नहीं है। तु स्वंय भी ऐसे अनन्त घोंसले अनन्त काल से अनन्त बार बनाता आ रहा है। तुझे याद नहीं तु भूल गया है, हे कोंतयी पर मुझे सब याद है। यह तेरा कोई पहला जन्म नहीं है। तु शरीर नहीं आत्मा है। जो सदा से हमेशा के

लिए अमर है । इसमें कभी भी किसी भी काल में कुछ भी जमा-घटा कभी भी किसी भी यत्न से सम्भव ही नहीं है । इसलिये तु सदा निरन्तर मेरे निज स्वरूप का ही केवल "ध्यान" कर । शेष सब तु मुझ पर छोड़ दे । "मैं" तुझे सभ पापों से सदा के लिए मुक्त कर दूँगा । केवल एक बार स्वास अन्दर बाहर करने से असंख सूक्षम शरीर तेरी साँस की तपश से केवल ऐसे भुन जाते हैं जैसे गर्म भट्ठी में अन्न का दाना । यही हाल जल का है केवल एक घूँट जल में असंख्य शरीर "जिबह" कर दिये जाते हैं । इन सब सूक्षम-छुद्र शरीरों में केवल आत्मायें कैद हैं ! और इन को जिबह करने का "जुर्माना" प्रत्येक आत्मा का शैतान के हाथ पर रखना ही पड़ता है । तेरा रोना-पीटना कोई नहीं सुनेगा कि तु इनके बिना अर्थात अन्न-जल-वायु के बिना स्थिर कैसे रह सकता है ? इसमें तेरा क्या दोष है इत्यादि । तुझे प्रत्येक आत्मा का हरजाना हर हाल में भुगतना ही पड़ेगा । इसीलिये तुझे कहा है कि जुर्माना भुगतने के लिये "धन" एकत्र कर । जो धन तु एकत्र कर रहा है वो समस्त पदार्थ केवल शैतान का धोखा मात्र है, तु इन्हें पकड़ कर बैठा है फिर भी निरन्तर ये तेरे हाथ से खिसकते जा रहे हैं । रूप की सत्ता केवल एक बड़ा दिव्य धोखा मात्र है । ये सत्ता कभी भी स्थिर नहीं रहती प्रत्यक्ष होते ही घटने लगती है । और तु ताली पीटने में लगा है (हैपी बॅथ डे) बहुत बढ़िया इलाज

तेरी इस सुन्दर बुद्धि का शैतान ने इस जेल खाने में विशेष-2 सैल (कोठरियाँ) बना कर केवल "तेरे लिये" ही तेरे नाम की तख्तियाँ लगाकर इंतजार कर रहा है। वहाँ तुझे अवश्य सब कुछ समझा-पढ़ा दिया जायेगा। फिर कौन सा धन काम करेगा? "राम (जड़ चेतन में निरन्तर समाई ताकत) नाम (प्रकाश) धन संग सखाई। अहनिस निरमल हर लिव लाई।" "राम नाम बिन कवन हमारा। सुख-दुख सम कर नाम न छोडउ आपे बक्स मिलावण-हारा।" तु गद्धियों-चोलों शक्लों के पीछे भाग रहा है चूम-चाट रहा है। शैतान को और क्या चाहिये? रोज का दो से चार घंटे केवल उस बख्शने वाले का ध्यान तथा जप निर्मल पाक हृदय से रोज का उस सृष्टि के तेरे द्वारा हुये "हनन" का केवल भुगतान मात्र है। और फिर छूटना चाहता है तो "स्वास-गिरास न वीसरे सफल मूरत गुर - केवल रागमई आवाज (शब्द)-किसी गद्दीधारी की कोई कल्पना यहाँ विचार में भी नहीं है, आप।" ये धन अथवा कमाई तभी काम करती है जब "पवित्रता" से कमाई जाये केवल! "जे रत लगे कपड़े जामा होई पलीत। जो रत पीवे माणसा तिन को निरमल चीत। नानक "नाउ" खुदाई का दिल हच्छे मुख लेह।" अर्थात केवल दिल और जुबान की पवित्रता से ही कमाया हुआ ये नाम (प्रकाश केवल जो आवाज (शब्द) रागमई से निरन्तर प्रत्यक्ष होता है।) रूपी धन ही तेरा जुर्माना अनन्त जन्मों

का भुगतान देने में समर्थ हो सकेगा । उसे ध्यान में रखना-याद करना तेरी निजी आवश्यकता है केवल । इसमें केवल तेरा अपना ही कल्याण है । जिसे तु याद कर रहा है (प्रभु) उसे तेरे इस कार्य की यकीनी तौर पर निश्चित रूप से जान ले कि कोई जरूरत ही नहीं है । अब जो लफजों को नाम (प्रकाश) बता रहे हैं और उन्हें सुना कर केवल दावा पेश करते हैं कि हम नाम का दान करते हैं । और तुझ जैसे केवल लफजों को सुनकर ही नाचने कूदने लगते हैं-जन्म दिन मनाने लगते हैं कि हमें "नाम" मिल गया है कुछ करने की आवश्यकता ही अब नहीं रह गई । ऐसे निकृष्ट गद्दीधारी शिष्यों सहित इस अँधेरे जेलखाने मे ढकेले जा चुके हैं । जो भ्रम बना हुआ है वो शैतानी ताकत है, केवल जल्दी ही वो भी दूर कर दी जायेगी, ऐसे अनन्त मत-धर्म आज लाईब्रेरी में भी जगह नहीं प्राप्त कर पा रहे बेचारे, जिन के नाम पर कभी लाखों की भीड़ इकट्ठी हो जाया करती थी । फैसला तु खुद कर ले तुझे ही कलम थमा देते हैं । हमें कुछ मत बता केवल अपने से ही पूछ, कि तेरे पास नाम है ? सिर्फ नाम लफज की जगह "प्रकाश" लिख ले फिर अपने अन्दर झाँक और देख कि तेरे पास क्या है जो तु नाचने-कूदने में लगा है । अभी पोल खुल जायेगी, इन परमात्मा बने बैठे गद्दीधारियों की ! और अपना भी फैसला तु स्वंय ही लिख ले, कलम तो तेरे हाथ में थमा ही दी है । क्योंकि फैसला अपना

केवल रूह स्वंय ही लिखती है और किसी ने कुछ नहीं करना । "फल पर केवल मेरा अर्थात परमात्मा का ही अधिकार है । तेरा केवल कर्म पर ही अधिकार है । इसलिये जैसा में कहता हूँ तु केवल वैसा ही कर । जिनको तु मारने से डर रहा है । इन्हें तो मैं पहले ही खा चुका हूँ । मैं ही काल (शैतान) हूँ ।" इन नकली बने परमात्मा से तु कैसे बचेगा ? जो धर्म मर्यादा स्थापित करने के लिये ही केवल जीव को धोखा देने के लिये बार-2 अवतार धारण करता है । इन पेचीदगियों को तु बिना उस "एक" असल की दया के कभी सुपने में भी नहीं जान सकेगा ! सभी प्राणियों का "अन्न" पर बराबर का अधिकार है । इसीलिये सब यही निरन्तर पुकारते हैं कि "यह अन्न मेरा हो ।" केवल ईमानदारी से कमाया हुआ साधन जरूरतमंदों का ध्यान रख कर बचा हुआ उच्छिष्ट ही केवल आत्मा के लिये इस मृत लोक में स्थिर रहने का साधन मात्र (साबित) हो सकता है । इसीलिये वेद प्रभु में भी स्पष्ट ब्यान किया है कि "कभी भी किसी से कुछ भी स्वीकार न करना चाहिए, यहाँ तक कि पुत्र-पोत्रों को भी माँ-बाप से "दान" की रूचि न रखनी चाहिये ! " प्रसाद का अन्न भूखे अथवा यात्री के लिये होता है कीमत उस की भी देनी पड़ती है । शैतान के इस कब्रिस्तान में मुफ्त में पानी की केवल एक बूँद भी नहीं मिलती । आप के ग्रन्थ साक्षी हैं, कि कितनों नें केवल पानी के अभाव में तड़प-2 कर

दम तोड़ा । क्या परमात्मा किसी तीर्थ पर विचरण करने गये थे ? यानी कि वो असल केवल खामोशी से इस खेल को देखता है । करता केवल जीव है, प्रेरणा शैतान देता है । जब तक जीव शैतानी प्रेरणा (मन) को व्यवहारित करता रहता है वो इस भवसागर में नीचे-ऊपर गोते खाता रहता है । जब कभी वो प्रभु प्रेरणा अनुसार व्यवहारिक पवित्र जीवन जीने लगता है । तो "कोई" बाँह पकड़ कर जीव को इस अंधे कुँऐं से सदा के लिये निकाल लेता है । और वो कोई सिवा उस एक परमात्मा के कोई भी कभी भी किसी भी काल में समर्थ सुपने में भी नहीं हो सकता ! और तु उसे ही केवल भूला बैठा है ।

केवल उस एक अकाल पुरख परमात्मा के नाम पर लगाया भोग सौ से डेढ़ सौ ग्राम अन्न रूपी "प्रसाद" केवल मुँह लगाने के लिये ही तेरे लिये कल्याणकारी हो सकता है विशेष धर्म छोड़ कर । (कीमत उस प्रसाद की भी देनी ही पड़ती है । निर्मल हृदय से उसे याद कर उसको धन्यवाद देना ।) क्योंकि प्राण को स्थिर रखने के लिये केवल अन्न ही आधार है । उपनिषदों में एक मिसाल विचारणीय है । एक घोर अकाल के समय जब किसी ब्राह्मण के प्राण निकलने लगे, तो एक महावत को उर्द खाते देख उसने उस से इस खाये जा रहे अन्न की याचना की । तो महावत ने कहा कि आप ब्राह्मण श्रेष्ठ धर्म में हो, मैं चंडाल (नीच धर्म)

में हूँ। मेरे हाथ का झूठा अन्न आप को भ्रष्ट कर देगा। क्योंकि मेरे पास और अन्न (उर्द) नहीं है। तो ब्राह्मण ने कहा कि मेरे प्राण निकल रहे हैं इस वक्त बिना अन्न के। इस वक्त इसे स्थिर रखना धर्म से बढ़ कर के है। महावत ने पत्तल ब्राह्मण के आगे धर दिया। जब ब्राह्मण खा चुका तो महावत ने जल प्रस्तुत किया। जिसे लेने से ही ब्राह्मण ने इन्कार कर दिया-पीना तो दूर की बात। जब महावत ने इसका कारण जानना चाहा तो ब्राह्मण ने ब्यान दिया कि तु नीच जात से है तेरे हाथ से स्पर्श किया जल पीने से मैं धर्म भ्रष्ट नहीं होना चाहता। तो महावत हैरान हुआ कि अभी-2 तुमने मेरे हाथ का अन्न भोग लगाया, क्या तब धर्म भ्रष्ट नहीं हुए जो पानी लेने से धर्म से गिर जाओगे। तब ब्राह्मण ने स्पष्ट किया कि उस वक्त मेरे प्राण निकल रहे थे अन्न के अभाव में पर अब मैं स्थिर हूँ। ऐसा मैंने केवल प्राण टिकाने के लिये विशेष धर्म मर्यादानुसार किया है, क्योंकि अगर प्राण रहेगें तो मैं वो कार्य कर सकूँगा जिसके लिये प्रभू ने मुझे ये श्रेष्ठ मानव जन्म दिया है। जीवन रहेगा तो मैं इसका प्रायश्चित भी कर लूँगा। जब जल तो सर्वत्र उपलब्ध ही है इसके लिये मैं कैसे अपने इस श्रेष्ठ धर्म से गिर जाऊ ! इस मिसाल से गुरू (शब्द केवल) वाक्यों की सार्थकता प्रत्यक्ष हो ही जाती है। अब जो बिना सोचे-विचारे प्रत्येक अन्न पर जुगाली करने लगते हैं, प्रसाद इत्यादि के नाम

पर उन्हें भुगतने के लिये अवश्य हर वक्त तैयार रहना ही चाहिये । मत्था केवल "जहर" ही टेका जाता है । अमृत किसी के पास नहीं है जो उस का कोई "दान" कर रहा है । और दान रूपी उस जहर को हज्म करने की समर्था किसी में नहीं है । यदि आप का हाजमा कुछ अधिक बढ़िया है तो ये केवल आप को मुबारक है । और ऐसे परमात्माओं से आपको विशेष रूप से सावधान करते हैं । जो केवल "दृष्टि" मार कर इस जहर को अमृत बनाने का धंधा करने में व्यस्त हैं । ताज्जुब है अमृत बनाते-2 सारी उम्र इस संसार रूपी जहर में ही स्वंय सदा के लिये धुल गये । इन विद्वानों (मूर्ख श्रेणी के) का क्या होगा जो अभी भी इन धुले हुओं का ध्यान करने में ही अपने दुर्लभ मानुख जन्म को व्यर्थ इस जहर से भरे अंधे सागर में घोलते जा रहे हैं । "फरीदा कित्थे तेरे मा-प्यो - जिन्हीं तु जाणिओ । तै पासों ओ लद गये - तु अजे ना पतीणयों ।" अर्थात ये कब के तुझे छोड़ कर चले गये । तु भला उन्हें पकड़ कर बैठा है । इन्हें कहाँ ढूंढेगा । कौन बचायेगा तुझे ? इसीलिये कहा है "जीवत लउ बिउहार है - जग कउ तुम जानउ । नानक हर गुन गाई लै - सभ सुपन समानउ ।" अर्थात आखिरी उस मुश्किल की घड़ी से बचने के लिये तु उस "एक" को केवल प्रत्यक्ष कर ले । बिना उसके तेरा कोई भी मददगार अर्थात कल्याण करने वाला कभी सुपने में भी समर्थ न हो सकेगा !

इस अन्न का आधार केवल जल है और जल का केवल परमात्मा । नारा+अयन, नारा अर्थात जल और अयन अर्थात उसमें शयन करने वाला यानी के केवल परमात्मा । इसीलिये उसे "नारायण" कहा गया है । पचासी बार श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में इस लफज का प्रयोग हुआ है, जो केवल उस जड़-चेतन में समाई हुई निरन्तर ताकत को व्यक्त करने का एक मात्र साधन मात्र है वो कोई छुपा कर इसमें कैद नहीं कर दिया गया है, जो आप लफजों को नाम (प्रकाश) स्थापित करने में लगे हुऐ हो । "बावन अछर लोक त्रै - सभ कछ इन ही माह । ऐ अखर खिर जाहिगें - ओई अखर इन माह नाह ।" इन वाक्यों का भाव स्पष्ट करता है, संसारिक व्यवहार से अधिक इन लफजों का कुछ भी अर्थ नहीं है । अन्न पर मुँह चलाना जितना आसान है, हज्म करना उतना ही मुश्किल । एक मिसाल शास्त्रों में "भीष्म पितामह" की आती है जो विचारणीय है, भीष्म एक ऐसी "इन्द्रीय जीत" आत्मा हुई है द्वापर युग में, कि जिस का मुकाबला करने वाला दुर्लभ है । ऋषि परशुराम जिन से उन्हें ज्ञान मिला, उन्हें परास्त करने में असफल रहे अर्थात वो अपने नियम-मर्यादा पर दृढ़ रहे । केवल पिता की इच्छा पूर्ण करने के लिये उन्होंने इकलोते राज्य का "काम" रहित त्याग कर दिया । "इच्छित मृत्यु" का वरदान प्राप्त करने के बावजूद केवल "तप" में ही लगे रहे । केवल इसी "तप" के बल

पर ही महाभारत संग्राम में 18 दिन में से 11 दिन केवल वे ही इकलौते सेनापति रहे । और गिरे भी रथ से तो केवल अपने धर्म-मर्यादा अर्थात नियम की पालना करने के लिये ही सिर्फ । उन के त्याग तथा इतिहास को केवल लफजों में ब्यान करना असम्भव है । केवल कोई त्यागमयी जीवन जीने वाली दुर्लभ आत्मा ही इस "आत्मा" (भीष्म) की कुर्बानी को अनुभव कर सकती है, ब्यान वो भी नहीं कर सकती । इसीलिये पूरे हिन्दू जगत में उन्हें अपना पिता माना जाता है । और स्नान के वक्त प्रथानुसार सब से पहला "जल" उन्हें ही तर्पण किया जाता है ।......! जिक्र उस समय का है जब ये आत्मा आखिरी समय बाणों की सैयया (सेज) पर लेटी थी, और ज्ञान प्रस्तुत कर रही थी, उस वक्त तीनों लोकों की समस्त ताकतें भगवान कृष्ण सहित वहाँ विद्यमान थी । जब प्रसंग चल रहा था तब बीच में द्रौपदी (पांचाली) हँस पड़ी । जो स्थिति अनुसार मर्यादा उल्लंघन है । जिस का पितामह ने ऐतराज किया । जब पूछने पर भी पांचाली ने कुछ जवाब नहीं दिया तब पितामह ने अपनी कसम दी और सवाल दोहराया, कि हे पांचाली तु धर्म-मर्यादा का पालन करने वाली व्यवहारिक जीवन जीने वाली शास्त्रों की ज्ञाता है । तेरे ज्ञान के आधार पर ही युधिश्ठर "धर्मराज" कहलाता है और उसका छत्र चलता है । तु सच-2 बता सब के सामने कि तु बीच में क्यों हँसी तेरे से ये मर्यादा उल्लंघना क्यों

कर हुई, तु ठीक-2 बता मैं बुरा कदापि न मानूँगा । तेरे बिना बताये मैं आगे कुछ ब्यान कर सकूँगा । तब पांचाली ने ब्यान किया, पितामह आपको इन बाणों की सैयया पर लेटे ज्ञान प्रस्तुत करते देख कर मेरे (मुझे) को उस वक्त उस राज दरबार का ध्यान आ गया जब मुझे निर्वस्त्र करने का निकृष्ट व्यवहार पूरी राज सभा में किया जा रहा था और आप उस श्रेष्ठ धरती की राज सभा के श्रेष्ठ सभापति बने प्रत्यक्ष उपस्थित थे । पर आप उस वक्त खामोश थे, कुछ करने में समर्थ होने के बावजूद आपने कुछ नहीं किया, मेरे बार-2 दुहाई देने के बावजूद आप ने खामोशी को ही केवल अख्तियार किया । और आज आप शरीर से करने में असमर्थ हैं पर त्रिलोकी में ज्ञान बाँट रहे हैं । सच कहती हूँ पितामाह इसी कारण केवल मैं अपनी हँसी न रोक सकी और मेरे से उल्लंघना हो ही गई । ये उत्तर सुन कर पितामह कुछ क्षण खामोश रहे फिर उन्होंने ब्यान दिया कि बेटी तु ठीक कहती है । उस वक्त मेरा ज्ञान मेरी समर्था कहाँ चली गई थी ? जब कोई अबला नारी वो भी मेरी ही बहू पुकार-2 कर दुहाई दे रही है । अपनी मर्यादा को केवल स्थिर रखने के लिये और मैं खामोश क्यों था ? तो सुन बेटी ! मेरी बुद्धि पर किस का परदा पड़ गया था किसने मेरे शस्त्रों को पकड़ लिया था कौन मेरे बल को खा गया था मेरी समस्त कमाई अथवा समर्था कहाँ चली गई थी ?

तो सुन बेटी उस का कारण केवल "अन्न" है। मैंने राज का त्याग कर दिया था। मैं दुर्योधन का आश्रित था। उस के अन्न पर मुझे निर्भर रहना पड़ता था। और दुर्योधन का अन्न "दूषित" था, जो खून बनकर मेरी रगों में दौड़ रहा था। इसी "दूषित अन्न" ने मुझे कुंठित कर दिया था। मेरी बुद्धि पर इस "दूषित अन्न" से पर्दा पड़ गया था। इसलिये न मैं कुछ विचार सका और न कुछ कर ही सका। केवल खामोश रहा। इन बाणों की सैयया पर लेटे तु देख रही है न बेटी कि "दूषित अन्न" जो खून बनकर मेरी रगों में दौड़ रहा था, जिस ने मुझे अपाहिज बना दिया था, सारा का सारा बह गया है। जितना कर्जा इस "दूषित अन्न" का दुर्योधन द्वारा मुझ पर था वो सारा का सारा मैंने अपनी जान दे कर (ब्याज सहित) चुका दिया है। और अब मैं मुक्त हूँ। इसीलिए अब मेरी बुद्धि (विवेक) जाग्रत हो गई है और मैं केशव की दया से केवल "उसी" की ताकत से ज्ञान प्रस्तुत करने में समर्थ हूँ।

सिख जगत में एक मार्गदर्शक (अथवा उपदेशक) आत्मा (श्री गोबिंद सिंह जी) जब किला छोड़ती हैं, तो समस्त धन सामग्री-वस्त्र इत्यादि कीमती पदार्थ सिरसा नदी में बहा देती हैं। कुछ अग्नि भेंट कर दिया जाता है। सब ने एतराज किया, कि ये आप ने क्या किया इस वक्त धन-पदार्थ की कितनी आवश्यकता है। तुर्क (दुश्मन) सिर पर सवार हैं। इस धन पदार्थ

से हम बहुत कुछ सँवार सकते थे । जब अधिक विरोध हुआ तो उन्होंने जवाब दिया, कि कोई बाप क्या अपने बेटों को जहर दे सकता है ? ये सब चढ़ावा दान का केवल जहर मात्र है । दान पर मुँह चलाने से बुद्धि और बल दोनों का नाश हो जाता है । और इस मुश्किल की घड़ी में मुझे केवल इन दो पदार्थों (बुद्धि-बल) की अत्यन्त अधिक मात्रा में आवश्यकता है । ये घाटा इस वक्त मैं कैसे उठा सकता हूँ और शिष्य सब, पुत्र जैसे ही होते हैं । फिर मैं अपने हाथ से उन्हें कैसे जहर दे दूँ । ये ब्यान सुनकर सभी खामोश हो गये और आगे "बचे" हुऐ की कीमत अपनी जान माल सहित खोकर चुकाई । कौन इस सच्चाई से इन्कार कर सकता है ? गुरु श्रेणी की एक आत्मा ने केवल पेट की इस आग (भूख) को मिटाने के लिये तीस साल "अन्धे और बहरे" अंग्रेज अफसरों को एक सिपाही की हैसियत से सैल्यूट मारे, केवल इस "अन्न" के दाने को प्राप्त करने के लिये ! जब कि गुरु के पास सब समर्था थी । गुरु का सवाल था कि क्या चाहता है ? कहने लगे "नाम ।" "नाम" चाहता है तो फिर तेरे लिये मेरे पास कुछ नहीं है (पेट भरने के लिये) । अपनी कमा और खा । जबकि हर आये साधु के लिये उनसे उन्हें जरूरत के सभी पदार्थ (अन्न सहित) प्राप्त होते थे । लेकिन नाम चाहने वाले शिष्य के लिये कुछ नहीं था । यही कारण है कि "नाम" की दीवानी आत्मा ने तीस साल

नौकरी की । उस आत्मा ने जिसने पाँचो महाभूतों को जीते जी पार कर लिया था केवल नियम मर्यादा में रहने के लिये इस पेशे को अपनाया ! इसलिये हाथ जोड़ कर पालथी मारने से पहले सोच लो, जब तक अन्न का दाना गले से ऊपर है आप बादशाह हो, एक बार ये गले से नीचे उतर गया तो फिर आप बादशाह नहीं गुलाम हो इस "अन्न" नाम के दाने के । वो नचायेगा और आपको सिर नीचे और पैर ऊपर करके नाचने के लिये अवश्य मजबूर होना ही पड़ेगा निश्चित रूप से ! जरा सोचो उन का क्या बनेगा जो आँख बंद कर केवल मुँह चलाना ही अपना खानदानी पेशा समझते हैं, साथ ही इनका भी फैसला लिखो जो दृष्टि मार कर केवल आज जहर को अमृत बना देते हैं । इन धर्म के ठेकेदारों का क्या बनेगा शैतान के दरबार में "बेचारे ।" आखिर ऐसी "दुर्लभ" दृष्टि विशेष का इलाज तो करना वांच्छनीय ही है, इस दुर्लभ कार्य विशेष को अच्छी तरह से सम्पन्न करने हेतु निश्चित रूप से दृष्टि का विकार रहित होना आवश्यक ही है यकीनी तौर पर प्रत्येक काल में चतुर विद्वानों पातशाहों विशेषों !